☐ **डा० प्रेम सुमन जैन,**
एम० ए०, आचार्य, पी-एच० डी०
[विश्रुत भाषाशास्त्री, लेखक तथा सहायक प्रोफेसर, प्राकृत-संस्कृत विभाग, उदयपुर विश्वविद्यालय]

मेवाड़-न केवल शौर्य एवं देशभक्ति के लिए ही प्रसिद्ध है, किन्तु साहित्य, संस्कृति एवं कला की समृद्धि के लिए भी उसका गौरव भारत विश्रुत रहा है। प्राचीन आर्य भाषा-प्राकृत-अपभ्रंश एवं संस्कृत साहित्य के विकास में जैन मनीषियों के योगदान का एक रेखांकन प्रस्तुत है यहाँ।

मेवाड़ का प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत साहित्य

☐

राजस्थान के इतिहास में मेवाड़ जितना शौर्य और देशभक्ति के लिए प्रसिद्ध है, उतना ही साहित्य और कला की समृद्धि के लिए भी। इस भू-भाग में प्राचीन समय से विभिन्न भाषाओं के मूर्धन्य साहित्यकार साहित्य-सर्जना करते रहे हैं। उसमें जैन धर्म के अनुयायी साहित्यकारों का पर्याप्त योगदान है। प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा में कई उत्कृष्ट ग्रन्थ इन कवियों द्वारा लिखे गये हैं। इन भाषाओं के कुछ प्रमुख कवियों की उन कतिपय रचनाओं का मूल्यांकन यहाँ प्रस्तुत है, जिनका प्रणयन मेवाड़ प्रदेश में हुआ है तथा जिनके रचनाकारों का मेवाड़ से सम्बन्ध रहा है।

प्राकृत साहित्य

राजस्थान का सबसे प्राचीन साहित्यकार मेवाड़ में ही हुआ है। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ५-६वीं शताब्दी के बहुप्रज्ञ विद्वान् थे। 'दिवाकर' की पदवी इन्हें चित्तौड़ में ही प्राप्त हुई थी।[1] अतः इनकी साहित्य-साधना का केन्द्र प्रायः मेवाड़ प्रदेश ही रहा होगा। प्राकृत भाषा में लिखा हुआ इनका 'सन्मति तर्क' नामक ग्रन्थ अब तक राजस्थान की प्रारम्भिक रचना मानी जाती है। न्याय और दर्शन का यह अनूठा ग्रन्थ है। इसमें प्राकृत की कुल १६६ गाथाएँ हैं, जिनमें जैन न्याय के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ के प्रथम काण्ड में नय के भेदों और अनेकान्त की मर्यादा का वर्णन है। द्वितीय काण्ड में दर्शन-ज्ञान की मीमांसा की गई है। तृतीय काण्ड में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तथा अनेकान्त की दृष्टि से ज्ञेयतत्त्व का विवेचन है। जैन दर्शन के इस प्राचीन ग्रन्थ पर अनेक टीकाएँ लिखी गयी हैं।

आठवीं शताब्दी में मेवाड़ में प्राकृत के कई मूर्धन्य साहित्यकार हुए हैं। उनमें आचार्य हरिभद्र, एलाचार्य, वीरसेन आदि प्रमुख हैं। इन आचार्यों ने स्वयं प्राकृत साहित्य की समृद्धि की है तथा ऐसे अनेक शिष्यों को भी तैयार किया है जो प्राकृत के प्रसिद्ध साहित्यकार हुए हैं।

आचार्य हरिभद्र का जन्म चित्तौड़ में हुआ था। ये जन्म से ब्राह्मण थे, तथा राजा जितारि के पुरोहित थे।[2] जैन दीक्षा ग्रहण करने के बाद हरिभद्रसूरि ने जैन वाङ्मय की अपूर्व सेवा की है। प्राचीन आगमों पर टीकाएँ एवं स्वतन्त्र मौलिक ग्रन्थ भी इन्होंने लिखे हैं। दर्शन व साहित्य विषय पर आपकी विभिन्न रचनाओं में प्राकृत के ये ग्रन्थ अधिक प्रसिद्ध हैं—समराइच्चकहा, धूर्ताख्यान, उपदेशपद, धम्मसंगहणी, योगशतक, संबोहपगरण आदि।[3]

---

१. संघवी, सुखलाल, 'सन्मतिप्रकरण', प्रस्तावना, १९६३।
२. संघवी, 'समदर्शी आचार्य हरिभद्र' १९६३।
३. शास्त्री, नेमिचन्द्र, 'हरिभद्र के प्राकृत कथा-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन', द्रष्टव्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

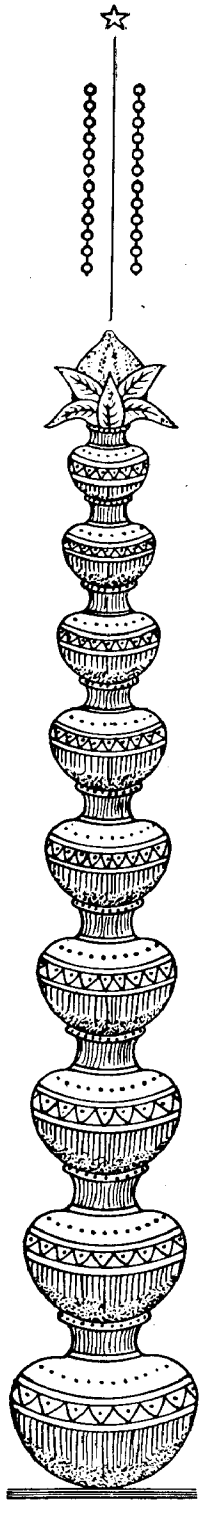

'समराइच्चकहा' प्राकृत कथाओं की अनेक विशेषताओं से युक्त है। इसमें उज्जैन के राजकुमार समरादित्य के नौ भवों की सरस कथा वर्णित है। वस्तुतः यह कथा सदाचारी एवं दुराचारी व्यक्तियों के जीवन-संघर्ष की कथा है। काव्यात्मक दृष्टि से इस कथा में अनेक मनोरम चित्र हैं। प्राचीन भारत के सांस्कृतिक जीवन का जीता-जागता उदाहरण है—समराइच्चकहा। 'धूर्ताख्यान' व्यंगोपहास-शैली में लिखी गयी अनूठी रचना हैं। आचार्य हरिभद्र ने इसे चित्तौड़ में लिखा था। इस ग्रन्थ में हरिभद्र ने पुराणों, रामायण, महाभारत आदि की कथाओं की अप्राकृतिक, अवैज्ञानिक, अबौद्धिक मान्यताओं तथा प्रवृत्तियों का कथा के माध्यम से निराकरण किया है। कथा का व्यंग्य ध्वंशात्मक न होकर रचनात्मक है। 'उपदेशपद' में प्राकृत की ७० प्राकृत कथाएँ दी गयी है। 'दशवैकालिक टीका' में भी प्राकृत की ३० कथाएँ उपलब्ध होती हैं। इन कथाओं में नीति एवं उपदेश प्रधान कथाएँ अधिक हैं। 'संवोहपगरण' का दूसरा नाम तत्त्व प्रकाश भी है। इसमें देवस्वरूप तथा साधुओं के आचार-विचार का वर्णन है। 'धम्मसंगहणी' में दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन है।[1] इस प्रकार हरिभद्र ने न केवल अपने मौलिक कथा-ग्रन्थों द्वारा प्राकृत साहित्य को समृद्ध किया है, अपितु टीकाग्रन्थों में भी प्राकृत के प्रयोग द्वारा मेवाड़ में प्राकृत के प्रचार-प्रसार को बल दिया है।

आचार्य हरिभद्र के शिष्यों में उद्द्योतनसूरि प्राकृत के सशक्त कथाकार हुए हैं। उन्होंने हरिभद्र से सिद्धान्त-ग्रन्थों का अध्ययन किया था। यद्यपि उद्द्योतनसूरि ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'कुवलयमालाकहा' की रचना जालोर में की थी, किन्तु अध्ययन की दृष्टि से उनका मेवाड़ से सम्बन्ध रहा है। मेवाड़ के प्राकृत-कथा-ग्रन्थों की परम्परा में ही उनकी कुवलयमाला की रचना हुई है। यद्यपि वह अपने स्वरूप और सामग्री की दृष्टि से विशिष्ट रचना है।[2] ऐसे ही प्राकृत के दो आचार्य और हैं, जिनका चित्तौड़ से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, किन्तु उनकी कोई रचना मेवाड़ में नहीं लिखी गयी है। वे हैं—एलाचार्य एवं आचार्य वीरसेन।

एलाचार्य मेवाड़ के प्रसिद्ध विद्वान् थे। वे वीरसेन के शिक्षा गुरु थे। इन्द्रनन्दि ने अपने 'श्रुतावतार' में एलाचार्य के सम्बन्ध में लिखा है कि बप्पदेव के पश्चात् कुछ वर्ष बीत जाने पर सिद्धान्तशास्त्र के रहस्य ज्ञाता ऐलाचार्य हुए। ये चित्रकूट (चित्तौड़) नगर के निवासी थे। इनके पास में रहकर वीरसेनाचार्य ने सकल सिद्धान्तों का अध्ययन कर निबन्धन आदि आठ अधिकारों (धवला टीका) को लिखा था।[3] वीरसेन ने धवला टीका शक सम्वत् ७३८ (८१६ ई.सं.) में समाप्त की थी। अतः एलाचार्य आठवीं शताब्दी में चित्तौड़ रहते रहे होंगे। इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। अतः ये वाचक गुरु के रूप में ही प्रसिद्ध थे।

आचार्य वीरसेन ने चित्तौड़ में अपना अध्ययन किया था। गुरु एलाचार्य की अनुमति से इन्होंने वाटग्राम (बड़ोदा) को अपना कार्यक्षेत्र बनाया था। वीरसेन संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने ७२००० श्लोक-प्रमाण समस्त खण्डागम की धवला टीका लिखी है। तथा कषायप्राभृत की चार विभक्तियों की २०,००० श्लोक प्रमाण जयधवलाटीका लिखने के उपरान्त इनका स्वर्गवास हो गया था। आचार्य वीरसेन की ये दोनों टीकाएँ उनकी अगाध प्रतिभा और पाण्डित्य की परिचायक हैं। जिस प्रकार 'महाभारत' में वैदिक परम्परा की समस्त सामग्री ग्रथित है, उसी प्रकार वीरसेन की इन टीकाओं में जैन दर्शन के सभी पक्ष प्रतिपादित हुए हैं। भारतीय दर्शन, शिल्प एवं विभिन्न विद्याओं की भरपूर सामग्री इन टीका ग्रन्थों में है।[4] इनकी भाषा प्राकृत और संस्कृत का मिश्रित रूप है।

---

१. जैन, जगदीशचन्द्र, 'प्राकृत साहित्य का इतिहास', पृ० ३३२।
२. जैन, प्रेमसुमन, 'कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन,' वैशाली, १९७५।
३. काले गते कियत्यपि ततः पुनश्चित्रकूटपुरवासी।
श्रीमानेलाचार्यो बभूव सिद्धान्ततत्वज्ञः॥
तस्य समीपे सकलं सिद्धान्तमधीत्य वीरसेन गुरुः।
उपरितमनिबन्धनाद्याधिकारानष्ट च लिखि॥

—श्रुतावतार, श्लोक, १७७-७८।

४. धवला टीका, प्रथम पुस्तक, प्रस्तावना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेवाड़ के प्राकृत-साहित्य की समृद्धि में पद्मनन्दि (प्रथम) का भी योग है। इनकी तीनों रचनाएँ—'जंबूदीवपण्णत्ति', 'धम्मरसायण', एवं 'पंचसंग्रह' प्राकृत में है। इनके ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि ये राजस्थान के प्रमुख कवि थे। 'जंबूदीवपण्णत्ति' नामक ग्रन्थ बारां नगर में लिखा गया था। अतः ये कोटा के समीपस्थ प्रदेश के निवासी थे। इनकी जंबूदीवपण्णत्ति में कुल २४२९ गाथाएँ हैं, जिनमें मनुष्य क्षेत्र, मध्यलोक, पाताल लोक और ऊर्ध्वलोक का विस्तार से वर्णन किया गया है। जैन भूगोल की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।[१] 'धम्मरसायण' में कुल १९३ गाथाएँ हैं। इस ग्रन्थ में धर्म का स्वरूप एवं सांसारिक भोगों से विरक्त होने के लिए नैतिक नियमों का विवेचन है। 'पंचसंग्रहवृत्ति' कर्म- सिद्धान्त की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।[२]

१२वीं शताब्दी में राजस्थान में प्राकृत के कथाकार हुए हैं—लक्ष्मणगणि। इन्होंने वि० सं० ११९९ (ई० सं० १९४२) में माण्डलगढ़ में 'सुपासनाहचरिय' की रचना की थी।[3] मेवाड़ में इनका विचरण होता रहता था। सुपार्श्वनाथ-चरित में इन्होंने तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ का चरित लिखा है। इस पद्यात्मक ग्रन्थ में उपदेश की प्रधानता है। अनेक लोक-कथाओं के द्वारा नैतिक आदर्शों को समझाया गया है। यद्यपि यह ग्रन्थ प्राकृत में लिखा गया है, किन्तु बीच-बीच में संस्कृत और अपभ्रंश का भी प्रयोग हुआ है। यथा—

एहु धम्मु परमात्थु कहिज्जइ। तं परपीडि होइ तं न हिज्जइ॥

कथाओं के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में कई सुभाषितों का भी संग्रह है। कवि ने कहा है कि संसार रूपी घर के प्रमादरूपी अग्नि से जलने पर मोह रूपी निद्रा में सोते हुए पुरुष को जो जगाता है वह मित्र है, और जो उसे जगाने से रोकता है वह अमित्र है—

भवगिह मज्झम्मि पमायजलणजलयम्मि मोहनिद्दाए।
जो जग्गवइ स मित्तं वारंता सो पुण अमित्तं॥

मेवाड़ में खरतरगच्छ के आचार्यों का पर्याप्त प्रभाव रहा है। उन्होंने प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत आदि भाषाओं में अनेक रचनाएँ लिखी हैं। जिनवल्लभसूरि का कार्यक्षेत्र मेवाड़ प्रदेश था। इन्हें चित्तौड़ में सं० ११६७ में आचार्य पद मिला था। इनकी लगभग १७ रचनाएँ प्राकृत में लिखी गयीं हैं। उनमें 'द्वादश कुले', 'सूक्ष्मार्थविचारसार', 'पिंड विशुद्धि', 'तीर्थंकर स्तुति' आदि प्रसिद्ध हैं। जिनवल्लभसूरि प्राकृत एवं संस्कृत के अधिकारी विद्वान् थे।[४] उन्होंने 'भावारिवारणस्तोत्र' प्राकृत और संस्कृत में समश्लोकी लिखा है। इनके पट्टधर जिनदत्तसूरि राजस्थान के कल्पवृक्ष माने जाते हैं। इनकी १०-११ रचनाएँ प्राकृत में हैं। उनमें 'गणधरसार्धशतक' एवं 'सन्देहदोहावली' उल्लेखनीय है। जैन आचार्यों के जीवन-चरित्र की दृष्टि से ये ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है।[५] चित्तौड़ के प्राकृत कवियों में जिनहर्षगणि का भी प्रमुख स्थान है। इन्होंने 'रत्नशेखरीकथा' चित्तौड़ में प्राकृत में लिखी थी।[६] इससे सिंहलद्वीप की राजकुमारी रत्नवती की कथा वर्णित है। इस सिंहल की पहचान डा० गौरीशंकर ओझा ने चित्तौड़ से करीब ४० मील पूर्व में 'सिंगोली' नामक स्थान से की है (ओझा निबन्ध संग्रह, भाग २, पृ० २८१)।

अपभ्रंश-साहित्य

मेवाड़ में प्राकृत व संस्कृत की अपेक्षा अपभ्रंश के कवि कम हुए हैं। हरिषेण, धनपाल, जिनदत्त एवं विमल-कीर्ति मेवाड़ से सम्बन्धित अपभ्रंश के कवि हैं। यद्यपि मेवाड़ प्रदेश में अपभ्रंश की कई रचनाएँ सुरक्षित हैं, किन्तु उनमें रचना स्थल आदि का उल्लेख न होने से उन्हें मेवाड़ में रचित नहीं कहा जा सकता।

१. शास्त्री, नेमिचन्द्र, 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा' भाग ३, पृ० ११०-१२१।
२. शास्त्री, हीरालाल, 'पंचसंग्रह', प्रस्तावना।
३. देसाई, 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास', पृ० २७५।
४. 'मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि स्मृतिग्रन्थ', पृ० २०
५. नाहटा, 'दादा जिनदत्तसूरि'।
६. नाहटा, 'राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा', पृ० ३२।

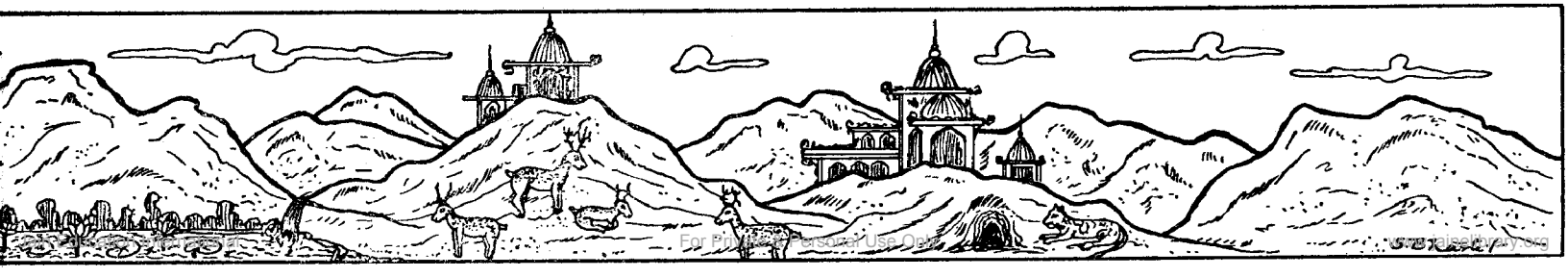

हरिषेण एवं धम्मपरिक्खा

हरिषेण ने अपनी धम्मपरिक्खा वि० सं० १०४४ में लिखी थी। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि मेवाड़ देश में विविध कलाओं में पारंगत एक हरि नाम के व्यक्ति थे। ये श्री ओजपुर के धक्कड़ कुल के वंशज थे। इनके एक गोवर्द्धन नाम का धर्मात्मा पुत्र था। उनकी पत्नी का नाम गुणवती था, जो जैन धर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा रखने वाली थी। उनके हरिषेण नाम का एक पुत्र हुआ, जो विद्वान् कवि के रूप में प्रसिद्ध हुआ। उसने किसी कारणवश चित्तौड़ को छोड़कर अचलपुर में निवास किया। वहाँ उसने छन्द-अलंकार का अध्ययन कर 'धर्मपरीक्षा' नामक ग्रन्थ लिखा।[1]

हरिषेण ने धर्म परीक्षा की रचना प्राकृत की जयराम कृत धम्मपरिक्खा के आधार पर की थी। इन्होंने जिस प्रकार से पूर्व कवियों का स्मरण किया है, उससे हरिषेण की विनम्रता एवं विभिन्न शास्त्रों में निपुणता प्रगट होती है।

धर्म परीक्षा ग्रन्थ भारतीय धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें वैदिक धर्म के परिप्रेक्ष्य में जैन-धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी है। दो समानान्तर धर्मों को सामने रखकर उनके गुण-दोषों का विवेचन प्रस्तुत करना एक प्राचीन मिथक है, जो इन धर्म परीक्षा जैसे ग्रन्थों के रूप में विकसित हुआ है। हरिषेण ने इस ग्रन्थ में अवतारवाद, पौराणिक कथानक तथा वैदिक क्रियाकाण्डों का तर्कसंगत खण्डन किया है, साथ ही अनेक काव्यात्मक वर्णन भी प्रस्तुत किये हैं। ११वीं सन्धि के प्रथम कडवक में मेवाड़ देश का रमणीय चित्रण किया गया है। कहा गया है कि इस देश के उद्यान, सरोवर, भवन आदि सभी दृष्टियों से सुन्दर व मनोहर हैं। यथा—

जो उज्जाणहिं सोहइ खेयर मोहइ वल्ली हरिहिं विसालहिं।
मणि-कंचण-कम पुण्णहिं वण्ण खण्णहिं पुरिहिं स गोउर सालहिं॥

धनपाल एवं भविसयत्तकहा

धनपाल अपभ्रंश के सशक्त लेखकों में से हैं। इन्होंने यद्यपि अपने ग्रन्थ 'भविसयत्तकहा' में उसके रचना-स्थल का निर्देश नहीं किया है, किन्तु अपने कुल धक्कड़ वंश का उल्लेख किया है। इनके पिता का नाम मायेश्वर और माता का नाम धनश्री था।[2] यह धक्कड़ वंश मेवाड़ की प्रसिद्ध जाति है। देलवाड़ा में तेजपाल के वि. सं. १२८७ के अभिलेख में धरकट (धक्कड़) जाति का उल्लेख है। अतः धक्कड़ वंश में उत्पन्न होने के कारण धनपाल को मेवाड़ का अपभ्रंश कवि स्वीकार किया जा सकता है।

'भविसयत्तकहा' अपभ्रंश का महत्त्वपूर्ण कथाकाव्य है। कवि ने इसमें लौकिक नायक के चरित्र का उत्कर्ष दिखाया है। एक व्यापारी के पुत्र भविसयत्त की सम्पत्ति का वर्णन करते हुए कवि ने उसके सौतेले भाई, बन्धुदत्त के कपट का चित्रण किया है। भविसयत्त अनेक स्थानों का भ्रमण करता हुआ कुसराज और तक्षशिलाराज के युद्ध में भी सम्मिलित होता है। कथा के अन्त में भविसयत्त एवं उसके साथियों के पूर्व जन्म और भविष्य जन्म का वर्णन है। कवि ने इस ग्रन्थ में श्रुतपंचमीव्रत का माहात्म्य प्रदर्शित किया है। वस्तुतः यह कथा साधु और असाधु प्रवृत्ति वाले दो व्यक्तित्वों की

---

१. इय मेवाड़-देसि-जण-संकुलि, सिरि उजपुर णिग्गय धक्कड़कुलि।
पाव-करिंद-कुम्भ-दारणहरि, जाउ कलाहिं कुसलु णाहरि।
तासु पुत्त पर-णारिसहोयरु, गुण-गण-णिहि-कुल-गयण-दिवायरु।
गोवड्ढणु णामे उप्पणउ, जो सम्मत्तरयण-सपुण्णउ।
तहो गोवड्ढणासु पिय गुणवइ, जो जिणवरपय णिच्चवि पणवइ।
ताए जणिउ हरिषेणे नाम सुउ, जो संजाउ विबुह-कइ-विस्सुउ।
सिरि चित्तउडु चइवि अचलउरहो, गयउ-णिय-कज्जे जिणहरपउरहो।
तहि छंदालंकार पसाहिय, धम्मपरिक्ख एह तें साहिय। —ध० प० ११, २६

२. धक्कड़ वणि वैसे माएसरहो समुब्भविण।
धणसिरि हो वि सुवेण विरइउ सरसइ संभविण॥ —भ. क. १, ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथा है। यह एक रोमांचक काव्य है। इसमें काव्यात्मक वर्णनों की भी कमी नहीं है।[1] सुभाषित एवं लोकोक्तियों का भी प्रयोग हुआ है। यथा—"किं घिउ होइ विरोलए पाणिए।" —(भ. क. २, ७, ८)

विमलकीर्ति एवं सोखवइविहाणकहा

विमलकीर्ति को रामकीर्ति का शिष्य कहा गया है। जयकीर्ति के शिष्य रामकीर्ति ने वि. सं. १२०७ में चित्तौड़ में एक प्रशस्ति लिखी है।[2] अतः विमलकीर्ति का सम्बन्ध भी चित्तौड़ से बना रहा होगा। विमलकीर्ति की एक ही रचना 'सोखवईविहाणकहा' उपलब्ध है। इसमें व्रत के विधानों का फल निरूपित है।

जिनदत्त एवं अपभ्रंशकाव्यत्रयी

जिनदत्तसूरि ने चित्तौड़ में अपने गुरु जिनवल्लभसूरि की गद्दी सम्हाली थी। इनका कार्यक्षेत्र राजस्थान के कई भागों में था। मेवाड़ के साहित्यकार इन जिनदत्तसूरि की अपभ्रंश की तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं—(१) उपदेशरसायनरास, (२) कालस्वरूप कुलक और (३) चर्चरी। ये तीनों रचनाएँ अपभ्रंश काव्यत्रयी के नाम से प्रकाशित हैं।

'उपदेशरसायनरास' ८० पद्यों की रचना है। मंगलाचरण के उपरान्त इसमें संसार-सागर से पार होने के लिए सद्गुरु की आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है। अन्त में गृहस्थों के लिए भी सदुपदेश हैं। धर्म में अडिग रहते हुए यदि कोई व्यक्ति धर्म में विघात करने वाले को युद्ध में मार भी देता है तो उसका धर्म नष्ट नहीं होता। वह परमपद को प्राप्त करता है।

धम्मिउ धम्मुकज्जु साहंतउ, परु मारइ की वइ जज्झंतउ।
तु वि तसु धम्मु अत्थि न हु नासइ, परमपइ निवसइ सो सासइ॥

—(उप. २६)

'कालस्वरूप कुलक' में जिनदत्तसूरि ने धर्म के प्रति आदर करने और अच्छे गुरु तथा बुरे गुरु की पहचान करने को कहा है। गृहस्थों को सदाचार में प्रवृत्त करना ही कवि का उद्देश्य है। जिनदत्तसूरि ने अपनी तीसरी रचना 'चर्चरी' की रचना व्याघ्रपुर नगर (वागड़ प्रदेश) में की थी। इसमें ४७ पद्यों द्वारा उन्होंने अपने गुरु जिनवल्लभसूरि का गुणगान तथा चैत्य-विधियों का विधान किया है।[3]

संस्कृत-साहित्य

मेवाड़ प्रदेश में संस्कृत साहित्य का लेखन गुप्तकाल में ही प्रारम्भ हो गया था। भंवर माता का शिलालेख वि. सं. ५४७ का है, जो संस्कृत में काव्यमय भाषा में लिखा गया है। इसके बाद संस्कृत की कई प्रशस्तियाँ मेवाड़ में लिखी गयी हैं, जो ऐतिहासिक और काव्यात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, किन्तु स्वतन्त्र रूप से संस्कृत में काव्य ग्रन्थ यहां मध्ययुग में ही लिखे गये हैं। राजाओं के आश्रय में रहने वाले कवियों ने विभिन्न विषयों पर खण्डकाव्य व मुक्तककाव्य लिखे हैं।[4]

प्राकृत की भाँति संस्कृत में भी मेवाड़ में सर्वप्रथम ग्रन्थ-रचना करने वाले आचार्य सिद्धसेन हैं। इनके बाद अनेक जैन आचार्यों ने यहाँ संस्कृत के ग्रन्थ लिखे हैं, जिन्हें जैन संस्कृत काव्य के नाम से जाना जाता है। किन्तु केवल तीर्थंकर की स्तुति कर देने अथवा श्रावक व साधु के आचरण का विधान करने से कोई काव्य ग्रन्थ जैन काव्य नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार का विभाजन करना ही गलत है। मेवाड़ के संस्कृत साहित्य के इतिहास में इन जैन आचार्यों द्वारा प्रणीत काव्य उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं, जितने अन्य कवियों के। यहाँ जैन परम्परा के पोषक केवल उन प्रमुख कवियों के संस्कृत ग्रन्थों का मूल्यांकन प्रस्तुत है, जिनका मेवाड़ से कोई न कोई सम्बन्ध बना रहा है।

---

१. शास्त्री, देवेन्द्रकुमार, 'भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथाकाव्य'
२. शास्त्री, नेमिचन्द्र, ती. म. एवं उनकी आ. प., भाग ४, पृ० २०६
३. कोछड़, हरिवंश, 'अपभ्रंशसाहित्य', पृ० ३६१
४. दृष्टव्य—पुरोहित चन्द्रशेखर, 'मेवाड़ का संस्कृत साहित्य का योगदान' (थीसिस), १९६९

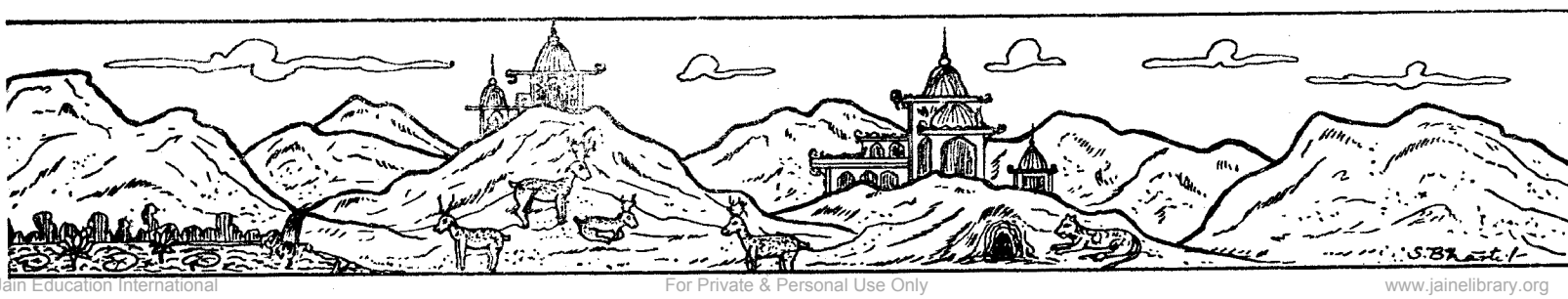

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्यायावतार

सिद्धसेन दिवाकर की प्राकृत रचना 'सन्मतिप्रकरण' के अतिरिक्त उनकी संस्कृत रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। ३२ श्लोक वाली इन्होंने इक्कीस द्वात्रिंशिकाएँ तथा न्यायावतार नामक ग्रन्थ संस्कृत में लिखा था। द्वात्रिंशिकाओं में स्तुति तथा जैन दर्शन के विभिन्न पक्षों का निरूपण किया गया है।[1] न्यायअवतार में जैन दृष्टि से पक्ष, साध्य, हेतु, दृष्टान्त, हेत्वाभास आदि के लक्षण हैं तथा अन्त में नयवाद और अनेकान्तवाद के स्वरूप का स्पष्ट विवेचन है। जैन न्याय का समन्वित स्वरूप प्रगट करने वाला यह सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। सिद्धसेन दिवाकर ने गुप्त युग में मेवाड़ में संस्कृत की ऐसी सशक्त रचनाएँ प्रस्तुत कर न केवल तार्किक जगत में जैन न्याय की प्रतिष्ठा की, अपितु मेवाड़ में संस्कृत-रचना की परम्परा को सुस्थिर भी किया। इनके अध्ययन और साहित्य-सृजन के परिणामस्वरूप ही चित्तौड़ सदियों तक जैन विद्या का अध्ययन-केन्द्र बना रहा।

हरिभद्रसूरि की संस्कृत रचनाएँ

चित्तौड़ को संस्कृत-साहित्य का प्रधान केन्द्र बनाने में आचार्य हरिभद्र का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने दर्शन और प्रमाण-शास्त्र की अनेक रचनाएँ संस्कृत में लिखी हैं। प्राकृत में लिखे आगमों को विद्वान् समाज के सम्मुख व्याख्या सहित प्रस्तुत करने में हरिभद्र अग्रणी हैं। इन्होंने आगमों पर टीकाएँ भी लिखी हैं तथा स्वतन्त्र ग्रन्थ भी। इनकी संस्कृत रचनाओं की संख्या पर मतभेद है। अभी तक उनकी निम्न संस्कृत रचनाएँ उपलब्ध हैं :—

१. प्राचीन ग्रन्थों पर टीकाएं

१. अनुयोगद्वार विवृत्ति
२. आवश्यक सूत्र निवृत्ति
३. आवश्यक सूत्र बृहत् टीका
४. चैत्यवन्दन सूत्र वृत्ति
५. जीवाजीवाभिगम सूत्र लघु वृत्ति
६. तत्वार्थसूत्र लघु वृत्ति
७. दशवैकालिक बृहद्वृत्ति
८. नन्दी अध्ययन टीका
९. पंच सूत्र व्याख्या
१०. प्रज्ञापना सूत्र टीका
११. ध्यानशतकवृत्ति
१२. श्रावक प्रज्ञप्ति टीका,
१३. न्याय प्रवेश टीका।

२. मौलिक ग्रन्थ (टीका सहित)

१४. अनेकान्तजयपताका
१५. योगदृष्टि समुच्चय
१६. शास्त्रवार्ता समुच्चय
१७. सर्वज्ञसिद्धि
१८. हिंसाष्टक,
१९. अनेकान्तजयपताकोद्योत दीपिका।

३. टीका रहित स्वरचित ग्रन्थ

२०. अनेकान्तवाद प्रवेश
२१. अष्टकप्रकरण
२२. धर्मबिन्दु
२३. भावार्थमात्रवेदिनी
२४. योगबिन्दु
२५. लोकतच्व निर्णय
२६. श्रावक धर्मतन्त्र
२७. षड्दर्शन समुच्चय
२८. षोडश प्रकरण
२९. संसारदावानल स्तुति।[2]

---

१. संघवी, सुखलाल, 'सन्मति प्रकरण', प्रस्तावना, पृ० ९५-११३
२. शास्त्री, नेमिचन्द्र, वही, पृ० ५२-५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन समस्त रचनाओं का विषय प्रतिपादन यहाँ अपेक्षित नहीं है।[1] इनसे इतना अवश्य ज्ञात होता है कि हरिभद्रसूरि ने अपने समय में संस्कृत को धर्म और दर्शन के क्षेत्र में एक सशक्त भाषा के रूप में स्वीकार किया था।

जिनसेन

एलाचार्य एवं वीरसेन के समय में चित्तौड़ जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र बन गया था। अतः वीरसेन के प्रमुख शिष्य जिनसेन ने भी चित्तौड़ में काव्य-रचना की प्रेरणा ग्रहण की है। उनका सम्बन्ध चित्तौड़, बंकापुर एवं वटग्राम से रहा है।[2] जिनसेन की प्रतिभा और पाण्डित्य अद्वितीय था। वे जितने सिद्धान्तशास्त्रों के ज्ञाता थे उतने ही काव्य-शास्त्र के मर्मज्ञ। उनकी तीन संस्कृत रचनाएँ उपलब्ध हैं—१. पार्श्वाभ्युदय २. आदिपुराण एवं ३. जयधवलाटीका। पार्श्वाभ्युदय में जिनसेन ने कालिदास के मेघदूत की समस्यापूर्ति की है।[3] आदिपुराण में ऋषभदेव और भरतचक्रवर्ती की कथा के माध्यम से कवि ने प्राचीन इतिहास, धर्म-दर्शन व संस्कृति आदि अनेक विषयों का प्रतिपादन किया है।[4] जयधवला-टीका में जिनसेन ने अपने गुरु वीरसेन के कार्य को पूरा किया है। ४० हजार श्लोक प्रमाण टीका इन्होंने स्वयं लिखी हैं। यद्यपि जिनसेन के ये ग्रन्थ मेवाड़ में नहीं लिखे गये, किन्तु मेवाड़ भूमि की साहित्यिक परम्परा का पोषण अवश्य इनकी पृष्ठभूमि में है।

जिनवल्लभसूरि

राजस्थान की एक महान् विभूति के रूप में जिनवल्लभसूरि को स्मरण किया जाता है। ये संस्कृत, प्राकृत के अधिकारी विद्वान थे। खरतरगच्छ की परम्परा में इन्होंने स्वयं साहित्य लिखा है तथा अपने शिष्यों को भी इतना तैयार किया कि वे अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिख गये हैं। जिनवल्लभसूरि के संस्कृत में निम्न प्रमुख ग्रन्थ उपलब्ध हैं—

१. धर्मशिक्षाप्रकरण, २. संघपट्टक, ३. भावारिवारणस्तोत्र, ४. पंचकल्याणस्तोत्र, ५. कल्याणस्तोत्र, ६. सरस्वतीस्तोत्र, ७. सर्वजिनस्तोत्र, ८. पार्श्वजिनस्तोत्र, ९. पार्श्वस्तोत्र, १०. शृंगारशतक ११. प्रश्नोत्तरषष्टीशतक, १२. चित्रकूट प्रशस्ति आदि।[5]

इन ग्रन्थों का विषय धार्मिक है। किन्तु संस्कृत भाषा का चमत्कारिक प्रयोग कवि ने किया है। विभिन्न अलंकारों और छन्दों से ये रचनाएँ ओत-प्रोत हैं। यद्यपि उनके आकार छोटे हैं, किन्तु विषय की स्पष्टता है।

इन रचनाओं में 'शृंगारशतक' महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृति है। भरत के नाट्यशास्त्र और कामतन्त्र के दोहन के बाद सम्भवतः इसे लिखा गया है। जैनाचार्यों की यह अकेली शृंगार-प्रधान संस्कृत रचना है। इसमें कुल एक सौ इक्कीस श्लोक हैं। इस कृति में नायिका के अंगोपांग तथा हावभाव का अच्छा वर्णन हुआ है। एक पद्य में कवि कहता है कि नायिका की दन्त-ज्योत्सना गगन-मण्डल में फैलती हुई अखिल विश्व को अपनी धवलिमा से आप्लावित कर रही है। ऐसी स्थिति में वह अभिसार के लिए चन्द्रोदय की प्रतीक्षा क्यों करे?

> मुग्धे दुग्धादिवाशा रचयति तरला ते कटाक्षच्छटाली,
> दन्तज्योत्स्नापि विश्वं विशदयति वियद् मण्डलं विस्फुरन्ती।
> उत्फुल्लद् गंडपाली विपुलपरिलसत् पाणिडमाडम्बरेण,
> क्षिप्तेन्दो कान्तमदामिसर सरभसं किं तवेन्दूदयेन ॥७९॥

जिनवल्लभसूरि के शिष्य जिनदत्तसूरि की भी कुछ रचनाएँ संस्कृत में मिलती हैं। यथा—वीरस्तुति, सर्वजिन स्तुति, चक्रेश्वरीस्तोत्र, योगिनीस्तोत्र, अजितस्तोत्र आदि। ये सभी रचनाएँ भक्ति प्रधान हैं।

---

१. द्रष्टव्य—'समदर्शी हरिभद्रसूरि'।
२. 'आगत्य चित्रकूटात्ततः स भगवान् गुरोरनुज्ञात्
३. शास्त्री, नेमिचन्द्र, 'संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान', पृ० ४०२
४. शास्त्री, नेमिचन्द्र, 'आदिपुराण में प्रतिपादित भारत', द्रष्टव्य।
५. द्रष्टव्य—विनयसागर, 'जिनवल्लभसूरि का कृतित्व एवं व्यक्तित्व'

Jain Education International — For Private & Personal Use Only — www.jainelibrary.org

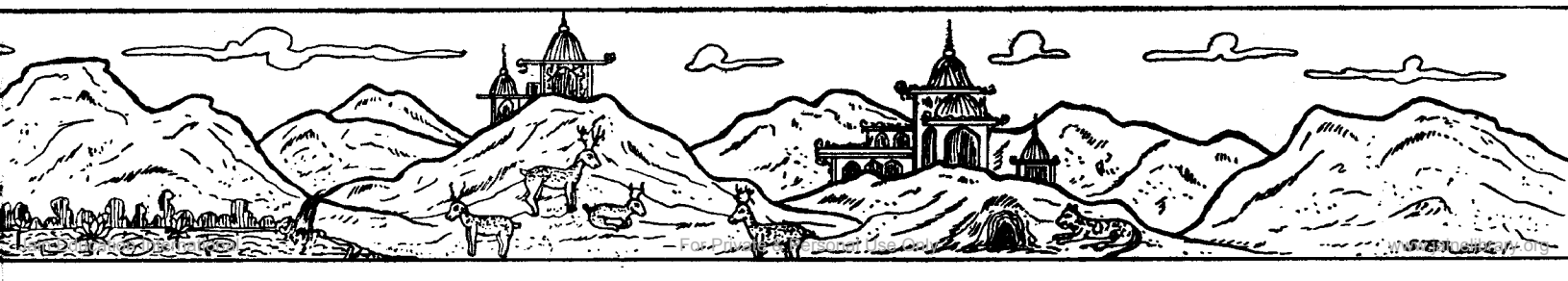

महाकवि आशाधर

आशाधर माण्डलगढ़ (मेवाड़) के मूल निवासी थे। किन्तु मेवाड़ पर शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमणों के उपरांत वे धारा नगरी (मालवा) में जा बसे थे। उसी के समीप नलकच्छपुर में उन्होंने अपनी साहित्य-साधना की थी। ये वि० की तेरहवीं शताब्दी के विद्वान थे। संस्कृत में लिखी गयी इनकी लगभग २० रचनाओं के उल्लेख प्राप्त हुए हैं।[1] किन्तु उपलब्ध कम ही हुई हैं। आध्यात्मरहस्य, सागारधर्मामृत, अनागारधर्मामृत, जिनयज्ञकल्प, त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र आदि इनकी प्रसिद्ध संस्कृत रचनाएँ हैं। पं० आशाधर का अध्ययन बड़ा ही विशाल था। वे जैनाचार, अध्यात्म, काव्य, कोष, आयुर्वेद-शास्त्र आदि कई विषयों के प्रकाण्ड पण्डित थे।

भट्टारक कवि

मेवाड़ प्रदेश में दिगम्बर परम्परा के अनेक भट्टारकों का विचरण हुआ है। चित्तौड़, उदयपुर, ऋषभदेव आदि स्थानों पर इन भट्टारकों ने ग्रन्थागार भी स्थापित किये हैं। ये भट्टारक धर्म-प्रचारक के साथ-साथ अच्छे कवि भी होते थे। मेवाड़ के प्रभावशाली भट्टारक कवियों में भ० सकलकीर्ति, भ० भुवनकीर्ति, भ० ब्रह्मजिनदास, भ० शुभचन्द्र एवं प्रभाचन्द्र आदि प्रमुख हैं। भट्टारक सकलकीर्ति,[2] ने २९ एवं ब्रह्म जिनदास ने १२ रचनाएँ संस्कृत में लिखी हैं। इनके ये ग्रन्थ काव्यात्मक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं।

आचार्य शुभचन्द्र संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। वि० सं० १५३०-४० के बीच इनका जन्म हुआ था। उदयपुर, सागवाड़ा, डूंगरपुर, जयपुर आदि स्थानों पर इन्होंने मूर्ति प्रतिष्ठा करायी थी। इन्होंने २४ रचनाएँ संस्कृत में लिखी हैं।[3] इनमें तीर्थंकरों का चरित, पाण्डवकथा, तथा जैन व्रत-विधानों का सुन्दर वर्णन हुआ है। जिनचन्द्र के शिष्य भट्टारक प्रभाचन्द्र का भी मेवाड़ में अच्छा प्रभाव रहा है। इन्होंने वि० सं० १५७२ में दिल्ली से अपनी गद्दी को चित्तौड़ में स्थानान्तरित कर लिया था।[4] इन्होंने प्राचीन साहित्य के उद्धार में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

१५वीं शताब्दी के कवि

वि० सं० १५वीं शताब्दी में मेवाड़ में अनेक जैनाचार्य हुए हैं। उनकी संस्कृत रचनाओं ने यहाँ के साहित्यिक वातावरण को प्रभावशाली बनाया है। सोमसुन्दर तपागच्छ के प्रमुख कवि थे। वि० सं० १४५० में राणकपुर में इनको वाचकपद प्राप्त हुआ था। बाद में ये देलवाड़ा आ गये थे।[5] इनकी संस्कृत रचनाओं में कल्याणकस्तव, रत्नकोश, उपदेश-बालावबोध, भाष्यत्रय अवचूरि आदि प्रमुख हैं।[6]

सोमसुन्दर के शिष्य मुनिसुन्दर भी संस्कृत के विद्वान थे। इन्होंने 'शान्तिकर स्तोत्र' देलवाड़ा में लिखा था।[7] सोमदेववाचक सोमसुन्दर के दूसरे प्रभावशाली शिष्य थे। महाराणा कुम्भा ने इन्हें कविराज की उपाधि प्रदान की थी। देलवाड़ा इस युग में संस्कृत साहित्य का प्रधान केन्द्र था। वि०सं० १५०१ में माणिक्य सुन्दरगणि ने 'भवभावनाबालावबोध' नामक ग्रन्थ संस्कृत में लिखा था। इस युग के प्रतिष्ठित कवि प्रतिष्ठा सोम हुए हैं। ये महाराणा कुम्भा के समकालीन थे। इन्होंने 'सोमसोभाग्यकाव्य' तथा 'गुरुगुणरत्नाकर' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। इन ग्रन्थों में तत्कालीन मेवाड़ के सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक जीवन की प्रामाणिक सामग्री

१. शास्त्री, ती० म० और उनकी आ० प०, भा० ४, पृ० ४१
२. जैन, बिहारीलाल, 'भ० सकलकीर्ति—एक अध्ययन' (थीसिस)
३. शास्त्री, वही, भा० ३, पृ० ३६५
४. जोहरापुरकर, 'भट्टारक सम्प्रदाय' लेखांक २६५
५. 'सोम सौभाग्यकाव्य' पृ० ७५, श्लोक १४
६. शोधपत्रिका, भा० ६, अंक २-३, पृ० ५५
७. सोमानी, रामवल्लभ, 'महाराणा कुम्भा' पृ० २१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकलित है। संस्कृत की इन रचनाओं में गुजराती, मेवाड़ी और देशी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, जो भाषा-विज्ञान की अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

१५वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि हुए हैं—महोपाध्याय चरित्ररत्नगणि। इन्होंने सं० १४९९ में चित्तौड़ में 'दान प्रदीप' नामक ग्रन्थ की रचना संस्कृत में की थी।[1] ग्रन्थ में दान के प्रकार एवं उनके फलों का अच्छा विवेचन हुआ है। इस ग्राथ में अनेक लौकिक कथाएँ भी दी गयी हैं। इसी शताब्दी में जयचन्द्र सूरि के शिष्य जिनहर्षगणि ने वि०सं० १४९७ में चित्तौड़ में 'वस्तुपालचरित' की रचना की थी। यह काव्य ऐतिहासिक और काव्यात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें वस्तुपाल एवं तेजपाल चरित्र के अतिरिक्त प्रासंगिक रूप से कई दृष्टान्त और कथाएँ भी दी गई हैं।

संस्कृत प्रशस्तियाँ

मेवाड़ राज्य में संस्कृत की अनेक प्रशस्तियाँ व अभिलेख उपलब्ध हैं। इनका केवल ऐतिहासिक ही नहीं, अपितु काव्यात्मक महत्त्व भी है। इस प्रकार की प्रशस्ति-लेखन में जैनाचार्यों का भी योग रहा है।

१२वीं शताब्दी के दिगम्बर विद्वान् रामकीर्ति ने चित्तौड़गढ़ में सं० १२०७ में एक प्रशस्ति लिखी थी।[2] जो वहाँ के समिधेश्वर महादेव के मन्दिर में लगी हुई है। कालीशिला पर उत्कीर्ण इस २८ पंक्तियों की प्रशस्ति में शिव और सरस्वती स्तुति के उपरान्त चित्तौड़गढ़ में कुमारपाल के आगमन का विवरण दिया गया है। प्रशस्ति छोटी होने पर भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

मेवाड़ के दूसरे जैन प्रशस्तिकार आचार्य रत्नप्रभसूरि हैं। इन्होंने महारावल तेजसिंह के राज्यकाल में जो प्रशस्ति लिखी थी वह चित्तौड़ के समीप 'घाघसे' की बावड़ी में लगी हुई थी। इसकी रचना वि०सं० १३२२ कार्तिक कृष्णा १ रविवार को हुई थी। इसमें तेजसिंह के पिता जैत्रसिंह द्वारा मालवा, गुजरात, तुरुष्क और सांभर के सामन्तों की पराजय का उल्लेख हैं।[3] रत्नप्रभसूरि की दूसरी महत्त्वपूर्ण प्रशस्ति चीरवां गांव की है। वि०सं० १३३० में लिखित इस प्रशस्ति में कुल संस्कृत के ५१ श्लोक हैं। इसमें चेत्रागच्छ के कई आचार्यों का नामोल्लेख है तथा गुहिल वंशी बापा के वंशजों में समरसिंह आदि के पराक्रम का वर्णन है।[4]

गुणभद्र मुनि ने वि० सं० १२२६ में बिजौलिया के जैन मन्दिर की प्रशस्ति लिखी थी। इसमें कुल ९३ श्लोक हैं। इस प्रशस्ति में पार्श्वनाथ मन्दिर के निर्माताओं के अतिरिक्त सांभर के राजा तथा अजमेर के चौहान नरेशों की वंशावली भी दी गयी है।[5] १५वीं शताब्दी में चरित्ररत्नगणि ने महावीर प्रासाद प्रशस्ति लिखी थी। इस प्रशस्ति में तीर्थंकरों और सरस्वती की स्तुति के उपरान्त मेवाड़ देश का सुन्दर वर्णन किया गया है। चित्तौड़ को मेवाड़ रूपी तरुणि का मुकुट कहा गया है। इसमें मन्दिर के निर्माता गुणराज की वंशावली दी गयी है।[6] इस प्रकार मेवाड़ के संस्कृत साहित्य के विकास में इन प्रशस्तिकारों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

मेवाड़ में प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा में ग्रन्थ लेखन का प्रारम्भ करने वाले जैन मुनियों ने इस परम्परा को बीसवीं शताब्दी तक बराबर अक्षुण्ण बनाये रखा है। आधुनिक युग में भी अनेक मुनि इस प्रकार के साहित्य लेखन में संलग्न हैं। अतः स्पष्ट है कि मेवाड़ में रचित किसी भी भाषा के साहित्य का इतिहास जैन कवियों की रचनाओं को सम्मिलित किये बिना अधूरा रहेगा। इस साहित्य को आधुनिक ढंग से सम्पादित कर प्रकाश में लाने की आवश्यकता है। □□

१. नवांगवार्धिशीतांशु (१४९९) मिते विक्रमवत्सरे।
चित्रकूट महादुर्गे ग्रन्थोऽयं समापयत॥ —प्रशस्ति, १६

२. श्री जयकीर्तिशिष्येण दिगम्बर गणेशिना।
प्रशस्तिरीदृशीचक्रे—श्री रामकीर्तिना॥

३. वरदा, वर्ष ५, अंक ३

३. वीरविनोद, भाग १, पृ० ३८९।

५. एपिक ग्राफिक इण्डिका, भाग २६ में प्रकाशित।

६. सोमानी, महाराज कु. पृ० ३३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org